LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

6/6 (श्लोक 63-78), रविवार, 06 जुलाई 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/MOw8xcZQv78

गुरुकृपा का महत्त्व

देवशयनी एकादशी के पावन पर्व की अद्भुत बेला में माँ गङ्गा के तट से गीता जी के ज्ञान गङ्गा का प्रवाह तथा अट्ठारहवें अध्याय का समापन जीवन में त्रिवेणी सङ्गम के समान योग बना रहे हैं।

माँ सरस्वती, भगवान् वेदव्यास जी, सन्त ज्ञानेश्वर जी महाराज और सद्गुरु स्वामी श्रीगोविन्ददेव गिरि जी महाराज के चरणों में नतमस्तक होते हुए, गङ्गा मैया के चरण कमलों में कोटि-कोटि वन्दना के साथ चतुर्थ स्तर के गीता साधकों को विनम्र अभिवादन करते हुये आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

नमामि सद्गुरुं शान्तं, सच्चिदानन्द विग्रहं।
पूर्णब्रह्म परमानन्दम, ईश आळन्दी वल्लभं।।

रत्नाकराधौतपदां हिमालय किरीटीनीं।
ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्याम वन्दे भारतमातरम्।।

यानन्त श्रुति मन्त्र शक्ति महती ब्रह्माद विद्यावती,
या सूत्रोदित शास्त्र पद्धतिरति प्रद्योर्तितां तद्र्युतिः।
या सत्काव्य तती प्रसादित्मतिरनानागुनालंकृति,
सा प्रत्यक्ष सरस्वती भगवती माम् त्रायातम भारती।।

ॐ पार्थाय प्रतिबोधीताम भागवता नारायणेन स्वयं,
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनीना मध्ये महाभारतं।
अद्वैतांमृत्वर्शिनिम भगवतीम अश्तादशाध्यायिनिम,
अम्ब तवामनुसन्दधामि भगवद्गिते भवद्वेशिनिम।।

नमोस्तुते व्यास विशाल बुद्धे,
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वयाभारत तैल पूर्णः,
प्रज्वलितो ज्ञानमयप्रदीपः।।

श्रीमद्भगवद्गीता की उपमा नहीं है। गीता जी का वर्णन करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

म्हणोनी मने काय वाचा, जो सेवकु होइल इयेचा।
तो स्वानन्दा साम्राज्याचा, चक्रवर्ती करी।।

जो मन, काया वाणी से भगवद्गीता की सेवा करेगा उसके मन में स्वानन्द का साम्राज्य स्थापित होगा तथा उसे आनन्द के लिये इधर -उधर नहीं भटकना पड़ेगा।

तैसा वाग्विलास विस्तारू, गितार्थेसी विश्व भरू।
आनन्दाचे आवारू, मांडू जगा।।

इस गीता के अर्थ से विश्व भर देना है और इसी भावना से हम गीता परिवार के लोग चल पड़े हैं। पिछले सप्ताह भगवान् समापन करते हुए अर्जुन को उनके मन की कुछ बातें कह रहे हैं कि ईश्वर के लिए सारा कर्म करना है, इस सृष्टिकर्ता के लिए कर्म करना है और जीव, जगत तथा जगदीश्वर इन तीनों का परस्पर सम्बन्ध जान लेना है और उसके शरणागत हो जाना है। जिसने हमें जीवन में उपलब्धियाँ दीं, जिसने हमारे लिए वायु का निर्माण किया, जिसने हमारे लिए जल का निर्माण किया, जिससे हमारे लिए अन्न का निर्माण किया, जिसने हमें पचाने की शक्ति भी प्रदान की और अन्दर हमारे शरीर में सारी प्रक्रियाएँ भी दीं, जिनके कारण हम यह जीवन जी रहे हैं और इसलिए हम कहेंगे -

क्या धारा हमने बनायी या बुना हमने गगन
क्या हमारी ही वजह से बह रहा सुरमित पवन
या अगन के हम हैं स्वामी नियंता जगधार के
या जगत की सूत्रधारक नियामक संसार के

हम नियामक नहीं है, सूत्रधार नहीं हैं।

सूत्रधार कोई और है, जो चला रहा है और इसीलिए उसके चरणों में नतमस्तक होना, उसके साथ अपना एक अनन्य सम्बन्ध स्थापित करना ही गीता जी की उपलब्धि या गीता जी का अन्तिम गन्तव्य है। उसे जानना, उसका और अपना सम्बन्ध पहचानना, स्वयं को पहचानना, कैसे साध्य होगा?

अर्जुन, तुम्हें उसके लिए मेरी शरण में आना होगा।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।18.62।।

तमेव अर्थात् केवल वही। यह भगवान् का वकार है। ईश्वर कि शरण में चले जाना- मात्र यही भगवान् को प्राप्त करने का मार्ग है।

शरणागति भी भिन्न-भिन्न होती है। यह कभी पूर्ण नहीं होती है।
जिस प्रकार से द्रौपदी चीर हरण के समय अन्य आश्रयों के समक्ष गईं। जैसे भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण, धृतराष्ट्र, पाँचों पति किन्तु ये आश्रय भी उसके लिए कुछ नहीं कर पाए। तब उन्होंने आर्त स्वर में पुकारा कि हे केशव! मेरी लज्जा की रक्षा कीजिएगा। मैं आपकी शरणागत हूँ।

भगवान् परमेश्वर के प्रति जीव की पूर्ण शरणागति चाहते हैं।

हमारे अन्तरङ्ग की अलग-अलग भावनायें होती हैं। हम जब अपने पिताजी की ओर देखते तो भावना अलग होती है। माता जी की ओर देखने की भावना अलग होती है। अपने पुत्र-पुत्री, कन्या उनकी ओर देखने के भावना अलग होती है। अपने मित्र सखा के प्रति भावनायें अलग। पति-पत्नी इनकी भावना अलग, बन्धु के प्रति अलग भाव होते हैं।
इन सबके प्रति सारी भावनाएँ जो होती हैं सारी भावनाओं पर ध्यान केन्द्रित करना है।

हमारी भक्ति में इन भावों को भिन्न-भिन्न नाम दिया गया है जैसे **वात्सल्य भाव** एक पुत्र का अपने माता या पिता के प्रति।

लालन भाव एक माता या पिता का अपने पुत्र के प्रति।
सखा भाव अर्जुन तथा भगवान का। सखा भाव से उनकी मैत्री है अर्थात् वे दोनों मित्र हैं।

हनुमान जी का भाव कौनसा था?
हनुमान जी का भाव है **दास्य भाव**। आप मेरे स्वामी हैं व मैं आपका सेवक हूँ। ये हनुमान जी का भाव है।

वेदान्ती होते हैं- उनका भाव होता है **अंश** तथा **अंशी** का अर्थात् हम अंश हैं तथा भगवान अंशी हैं।

एक होता है **माधुर्य भाव-** सन्तश्री गुलाब राव महाराज का माधुर्य भाव था। यह पति-पत्नी का भाव कहा जाता है। इसमें कोई भेद रहता ही नहीं और इसीलिए यह सर्वोपरी भाव है।

जिस प्रकार से तुम्हारे मन में मेरे प्रति भाव होगा मैं पूरक बन जाता हूँ।
हम अगर लालन भाव रखेंगे तो भगवान् हमारी माँ बन जाएँगे। जैसा ठाकुर रामकृष्णदेव का भाव था।

हम वात्सल्य भाव लेके जाएँगे तो भगवान् कौशल्या माता बन जाएँगे।

इस प्रकार से सर्व भावों से मेरी शरणागति करो।

यह परिपूर्ण शरणागति जीवन में आने से क्या होगा?

परमात्मा के प्रसाद से वह परमशान्ति प्राप्त होगी जो शान्ति कभी नहीं घटेगी। जो शान्ति कभी खण्डित नहीं होगी। भगवान् ने यह गुह्य ज्ञान समराङ्गण में सुनाया।

हम सभी को समराङ्गण का दृश्य ज्ञात है। अत्यन्त ही कोलाहल पूर्ण, भय तथा अनिश्चितता का वातावरण होता है। इस सङ्घर्षपूर्ण परिस्थिति में भी अर्जुन का ध्यान श्रीभगवान् के वचनों पर था या नहीं।

18.63

इति ते ज्ञानमाख्यातं(ङ्), गुह्याद्गुह्यतरं(म्) मया।
विमृश्यैतदशेषेण, यथेच्छसि तथा कुरु॥18.63॥

यह गुह्य से भी गुह्यतर (शरणागति रूप) ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। (अब तू) इस पर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर।

विवेचन- यह श्लोक गुरु शिष्य सम्बन्ध को उजागर करता है।
गुरु जो कहेंगे वो शिष्य को मानना ही चाहिए। शिष्य का कर्त्तव्य होता है गुरु की आज्ञा का पालन करे।

शिष्य शब्द का अर्थ ही होता है संशानात् शिष्यः शासनात् शिष्यः
शिष्य की दो कसौटियाँ बताई गयी हैं-

एक है **संशानात्** अर्थात् अपनी शङ्काओं का निवारण चाहने वाला।

शासनात् का अर्थ है गुरु की दी हुई आज्ञाओं का पालन करने वाला।

यहाँ तो अर्जुन ने स्वयं ही कह दिया था-

शिष्यास्तेहम शादिमान्त्वाम प्रपन्नम।।

मै प्रपन्न हूँ, आपका शरणागत हूँ, आपका शिष्य हूँ अर्थात् मुझे उपदेश दीजिये। उसके बाद में ही भगवान् ने उपदेश आरम्भ किया है क्योंकि कोई भी उपदेश बिना उस व्यक्ति से पूछे नहीं करना चाहिए।
विद्वत्जनों का सदैव यह कहना होता है कि

विचारल्या शिवाय बोलू नाहीं

अर्थात् किसी ने पूछा नहीं है तो उसे बताना नहीं है।

अर्जुन ने पूछा व शिष्यत्व ग्रहण किया। यह अलौकिक गुरु शिष्य द्वय है।

श्रीभगवान् यहाँ पर कहते हैं-
तीन स्तर होते हैं- गुह्य, गुह्यतर, गुह्यतम।
जैसे हम कहते हैं कि good, better and best.

यहाँ दो श्रेणियाँ ही हैं- गुह्य तथा गुह्यतर। अब तक श्रीभगवान् ने गुह्य तथा गुह्यतर ज्ञान बताया।

अब तुम सम्पूर्णतया उस पर विचार करो तथा जो मन में इच्छा हो वही करो।

श्रीभगवान् अपने शिष्य को अन्ध भक्त नहीं बनाना चाहते हैं।
गुरु ने यहाँ इतना परिपूर्ण ज्ञान दिया है कि शिष्य मन्थन करेगा तो उसे समझ में आयेगा कि गुरु ने जो कहा है वही उचित है। तथापि वे अपने शिष्य को स्वातन्त्र्य देते हैं।

गुरु की कसौटी होती है कि वह अपने शिष्य को इतना परिपूर्ण ज्ञान दे कि शिष्य सम्पूर्णता से स्वयं ही गुरु के बताये पथ पर चलने लगे।
यह सफल नेतृत्व का गुण होता है कि निर्णय लेने हेतु स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिये।

श्रीभगवान् अर्जुन से आत्म दीप जलाने के लिये कहते हैं।

यदि किसी ने हमारे कल्याण का मार्ग बताया तथा व्याकुलता से हमें बताया किन्तु यदि हम कुछ नहीं करेंगे तो वह व्यक्ति हमारे लिये क्या कर सकता है?

हम महिलाओं के जीवन में कई बार यह होता है कि हम हमारे बच्चों के कल्याण को समझकर उन्हें बताने का प्रयास करते हैं किन्तु वे नहीं सुनते हैं।

खलील जिब्रान कहते हैं-

आप जन्म दे सकते हो किन्तु सारे विचार नहीं संक्रमित कर सकते हो।

आज के वातावरण में भी गीता जी का उपदेश प्रासङ्गिक है क्योंकि बता देने के बाद हम मुक्त हो जाते हैं। जब श्रीभगवान् यह बात कहते हैं तो हम तो साधारण जीव हैं।

आगे श्रीभगवान् गुह्यतम ज्ञान के बारे में बताते हैं।

18.64

सर्वगुह्यतमं(म्) भूयः(श्), शृणु मे परमं(म्) वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति, ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥18.64॥

सबसे अत्यन्त गोपनीय सर्वोत्कृष्ट वचन (तू) फिर मुझसे सुन। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, इसलिये यह (विशेष) हित की बात (मैं) तुझे कहूँगा।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि सभी रहस्यमयी बातों में सबसे रहस्यमय बात मैं अब तुम्हें बताता हूँ। यह मेरा सर्वोपरि वचन है।
तुम्हें ही क्यों बताता हूँ क्योंकि तुम मुझे सबसे प्रिय हो।

जब खाण्डव वन दाह का प्रसङ्ग हुआ तब श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनों ने रक्षा की। तब अग्नि नारायण प्रसन्न हुए तथा वर माँगने के लिये कहा तो अर्जुन ने दिव्यास्त्र तथा गाण्डीव माँगे। जब श्रीकृष्ण से पूछा तो उन्होंने अर्जुन की निरन्तर प्रीति माँगी। यह अर्जुन की महत्ता है। अर्जुन भगवान् के प्रिय सखा तथा भ्राता हैं। वे जब मिलते हैं तो एक-दूसरे को गले से लगाते हैं। वे अर्जुन का कल्याण चाहते हैं।
जब तुम निरन्तर ईश्वर से जुड़ोगे तो क्या होगा?

18.65

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं(न्) ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥18.65॥

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला (हो जा), मेरा पूजन करने वाला (हो जा और) मुझे नमस्कार कर। (ऐसा करने से तू) मुझे ही प्राप्त हो जायगा - (यह मैं) तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; (क्योंकि तू) मेरा अत्यन्त प्रिय है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं अब मैं तुम्हें सर्वोपरी रहस्य बताता हूँ कि तुम्हारा मन मुझमें लगा दो। मेरे लिये कार्य करो। प्रेम से मेरी भक्ति करो।
भक्ति भी कैसी?

परि तेचि भक्ति ऐसी , पर्जन्याची सुटीका जैसी।
धरांवाचुनी अनारिसी, गतिचि नेणे।।

कां सकल जल सम्पत्ति, घेऊनि समुद्राते गिवसती।
गंगा जैसी अनन्यगति मिळालीचि मिले।।

ज्ञानेश्वर महाराज भक्ति की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या करते हैं। गङ्गा माता जिस प्रकार समुद्र से मिलती रहती हैं अथवा पर्जन्य की

धारा जैसे आकाश से छूटने के बाद सीधा धरती पर आकर मिलती है उसी प्रकार से प्रेम की धारा निरन्तर परमात्मा तक पहुँचनी चाहिये, इसीलिए भगवान् भक्ति से, प्रेमपूर्वक मन लगाने के लिये कह रहे हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या वैर से भी मन लगता है?
हाँ।
जिस प्रकार से रावण दिवस रात्रि श्रीराम का चिन्तन करता रहता था किन्तु वैर से।

शिशुपाल भी श्री कृष्ण का चिन्तन करता था किन्तु वैर से।
अपितु श्रीभगवान् ने उनका भी कल्याण किया किन्तु दोनों कल्याणों में अन्तर है।
प्रेम से मन लगाने वाले का कल्याण अर्थात् उसकी विजय।

वैर से मन लगाने वाले का कल्याण अर्थात् उसकी मुक्ति चाहे वो रावण हो या पूतना हो या शिशुपाल हो।

मोक्ष तथा आनन्ददायी जीवन में अन्तर होता है इसलिये भगवान् कहते हैं अर्जुन तुम मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बन जाओ।

भगवान् कहते हैं मद्याजी भव अर्थात् भगवान् के लिये कार्य करो।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं -

तरी बाह्य आणि अंतरा, आपुलिया सर्व व्यापारा।
मज व्यापकता ते वीरा, विषयों करी।।

हमारे बहिरङ्ग तथा अन्तर में जो भी व्यापार चलते हैं, वे परमात्मा को अर्पित करके करना।
इसके बाद कहते हैं कि माम् नमस्कुरु अर्थात् पूर्ण शरणागति एक ही स्थान पर रखो। जहाँ भी हम नमस्कार कर रहे हैं तो यह समझना कि परमात्मा को नमन कर रहे हैं। माता पिता, गुरु, वरिष्ठजन सभी में विद्यमान परमात्मा को नमन करना चाहिए।

आज पण्ढरपुर में लगभग चार लाख लोग वाली लेकर पहुँचे हैं। वे सभी एक दूसरे को नमस्कार करते हैं तथा विठ्ठल-विठ्ठल बोलते हैं। इसके पीछे भावना यह होती है कि हम दोनों के भीतर विद्यमान विठ्ठल को परस्पर प्रणाम।

राम-राम कहने की पद्धति भी इसी कारण से प्रचलित है कि आपके अन्दर के राम से मेरे अन्दर के राम का मिलन।

यह करने से क्या प्राप्त करोगे?
मुझे ही प्राप्त करोगे।

परमात्मा की प्राप्ति का यह अत्यन्त सुन्दर मार्ग श्रीभगवान् बताते हैं। हमारा मन जहाँ लगता है वहीं के गुण लेता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं हे राम! मेरे भीतर आओ।

इति वदति तुलसीदास, शङ्कर शेष मुनि मनरञ्जनम्।
मम हृदय कञ्ज निवास कुरु कामादी खलदल गञ्जनम्।।

श्रीराम आप अविकारी हैं तो यदि आप मेरे भीतर आयेंगे तो मेरे मन के सारे विकार चले जायेंगे। अपना मन वहीं लगाना जहाँ से सकारात्मक ऊर्जा हमारे भीतर आ सके।
जो व्यक्ति आपसी द्वेष करता है यदि उसका चिन्तन करोगे तो आपके मन में भी द्वेष आ जाएगा। यदि किसी ने मेरी निन्दा की और मैंने उसके साथ अपना मन लगाया तो मेरे मन में भी निन्दा की भावना आ जाएगी।

इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। हमारी सारी प्रकृति विद्युत पर कार्य करती है। किसी ट्रान्सफार्मर में जिस प्रकार विद्युत धारा

उच्च तनाव से निम्न तनाव की ओर अथवा निम्न तनाव से उच्च तनाव की ओर जाती है उसी प्रकार हम जिस प्रकार के विचारों के सम्पर्क में आते हैं हमारे विचार भी इसी प्रकार सङ्क्रमित हो जाते हैं।

जब हम पूज्य गुरुदेव अथवा भगवान् या अन्य सन्त महात्माओं का चिन्तन करते हैं। तो कुछ समय के लिए हमारा मन उनके मन के साथ जुड़ जाता है। हमें ज्ञात नहीं होता कि एक स्तोत्र बोलने मात्र से हमें ऊर्जा का अनुभव क्यों होने लगा? हमारे मन में शान्ति हो जाती है तथा हम दूसरों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार को भी भूल जाते हैं।

आज के प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने कहा कि मन को नियन्त्रित करने के लिए स्थूल साधनों का प्रयोग करो जैसे पुस्तिका में राम-राम लिखो। ऐसा करने से हमारे मन की नकारात्मक ऊर्जा चली जाती है।

यहाँ जब श्रीभगवान् मन्मना कहते हैं तो उनका तात्पर्य है कि उस सर्वात्मक परमात्मा के साथ हम अपने मन को जोड़ें। यदि हम उनके साथ अपने मन को जोड़ेंगे तो हमारा मन भी उनके मन जैसा होने लगेगा।

ऐसा करने से तुम मुझ में ही निवास करने लगोगे तथा इतने पर ही वे रुकते नहीं हैं। वे शपथपूर्वक इस बात को कहते हैं। यदि हम अपने घर में उदाहरण देखें तो हमारे बड़े भक्ति के सहारे ईश्वर पर अवलम्बित नहीं रहना चाहते हैं किन्तु ईश्वर भक्ति का अर्थ है परम प्रेम। तुम मुझे ही माँग रहे हो। तुम अपने सारे कार्य मुझे ही अर्पण कर रहे हो इसीलिए मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि तुम मुझे ही प्राप्त करोगे।

इस श्लोक को लौकिक रूप से देखने पर भी हमें यह समझ में आता है कि यदि हमें कोई भी कार्य करना है जैसे नृत्य, सङ्गीत, चित्रकला, कोई खेल इत्यादि तो हमें अन्य बातों से अपना मन हटाना पड़ेगा तथा इन पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ेगा। यदि हम मन लगाकर अपना कार्य नहीं करेंगे तो हमारे मन में हमारे कार्य के प्रति द्वेष आ जाएगा। इसीलिए अपने कार्य प्रति प्रेम तथा भक्ति की भावना होनी चाहिए ।

जो भी युवा इस बात को सुन रहे होंगे उन्हें अपने लक्ष्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यहाँ भगवान् ने परमात्मा प्राप्ति का लक्ष्य बताया है किन्तु हमारे लौकिक जीवन के लक्ष्य भी इसी नियम से पूर्ण होते हैं।

इसके बाद उसके लिए हमें कार्य करने होंगें। निरन्तर अभ्यास करना होगा। वह जहाँ जाएगा पूर्ण रूप से अपना ध्यान वहीं केन्द्रित करेगा।

उदाहरण के लिए, हमारे गीता परिवार के 'लर्न गीता' के माध्यम से लोग मात्र जिज्ञासु, पाठक अथवा पथिक ही नहीं बन रहे हैं अपितु चक्षणु भी बन रहे हैं। गीता जी में मन लग जाने के कारण लोग अपने लक्ष्य को प्राप्त कर रहे हैं।

हम अपने जीवन के किसी भी लक्ष्य को इसी प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं। यह गीता जी की विशेषता है कि यह हमें लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार से सहायता करती है।

मत अभ्युदय निश्रेयस स्वधर्मा:।।

अभ्युदय अर्थात् हमारी लौकिक प्रगति भी हो।

निश्रेयस अर्थात् परम कल्याण भी हो।

कदाचित अभी भी अर्जुन के मुख पर प्रश्न चिन्ह बना हुआ है कि मैं युद्ध का क्या करूँ?

श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन के मन का युद्ध दो धर्मों का युद्ध है। एक है उनका सामाजिक धर्म तथा दूसरा है व्यक्तिगत धर्म।

उनके समक्ष उनके सारे सगे सम्बन्धी है। पितामह भीष्म हैं, आचार्य द्रोण हैं जिन्होंने अर्जुन को धनुर्विद्या सिखाई थी।

अर्जुन का भाव व्यक्त करते समय ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि-

मी पार्थु द्रोणाचा केला, येने धनुर्वेदु मज दिला।
तेरे उपकारे काम आभारैला, वधी तयातें।।

आचार्य द्रोण ने ही अर्जुन को धनुर्विद्या सिखाई है अर्थात् बनाया है। अर्जुन स्वयं को भस्मासुर की उपमा देते हैं। अर्जुन के मन में द्वन्द्व है। एक ओर उनका क्षत्रिय धर्म है तथा दूसरी ओर उनका सम्पूर्ण परिवार है जिसकी हानि होने वाली है।
अर्जुन की चिन्ता को दूर करते हुए श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि मन के द्वन्द्व को समाप्त करने से ही हमारी विजय होगी।

18.66

सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं(म्) शरणं(म्) व्रज।
अहं(न्) त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥

सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर (तू) केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।

विवेचन- श्रीभगवान् कह रहे हैं कि अर्जुन, तुम शोक मत करो।
सभी धर्मों का त्याग करो। जबकि कर्त्तव्य एक साथ निर्वाह करने हेतु आते हैं।

जैसे किसी स्त्री को कार्यालय का भी आवश्यक कार्य है तथा उसके बच्चे को ज्वर भी है। अब वह अपना कर्त्तव्य कैसे निभायेगी?
ऐसे प्रसङ्ग पर हमारी विवेक बुद्धि जागृत होनी चाहिए।
पूज्य गुरुदेव का कथन है कि आपातकालीन स्थिति हो अथवा व्यापक हित- ऐसा कार्य पहले करना चाहिए।

ऐसे अवसर हेतु हमारी सद्विवेक बुद्धि जागृत होनी चाहिए।
यदि इस समय भी तुम्हे कोई द्वन्द्व हो तो भी तुम उस द्वन्द्व का त्याग करके मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त करूँगा। शोक मत करो। यदि चयन करने में भी तुम्हारे द्वारा कोई भूल हुई तो भी मैं तुम्हें मुक्त करूँगा क्योंकि तुम मेरी शरण में हो।

शरणागति कैसी है?
ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं जहाँ से मेरा जन्म हुआ वहीं पर जाकर मिलना।
सारे भूतों का निर्माण जिससे हुआ है वह सर्वात्मक परमात्मा है उसकी शरण में जाओ।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

आता विश्वात्मके देवे, येणे वाग्यज्ञें तोषावें।
तोषोनि मज़ द्यावें पसायदान से।।

आगे ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

सुवर्ण मणि सोनिया, ये कल्लोळु जैसा पाणिया।
तैसा मज़ धनञ्जया, शरण ये तू।।

जिस प्रकार स्वर्ण को गलाकर पुनः-पुनः आभूषण बनाए जाते हैं। गलाने पर आभूषण का स्वर्ण पुनः शुद्ध स्वर्ण में ही परिवर्तित होता है तथा जल से उठने वाली लहरें पुनः उसी जल में मिल जाती हैं। उसी प्रकार से हे अर्जुन!, तू मेरी शरणागति में आ।

इस प्रकार से ज्ञानेश्वर महाराज शरणागति की सर्वोपरि व्याख्या करते हैं।

आगे श्रीभगवान् अर्जुन को कहते हैं कि ये गुह्यतम रहस्य जो मैंने तुम्हें बताया है वह किसी और से बताने जाओगे तो वे इसके पात्र न हों। हो सकता है उन्हें यह समझ में नहीं आये। किसे बताना चाहिए और किसे नहीं, यह भी देखना होगा।
लर्न गीता कार्यक्रम में बहुत लोग आते हैं किन्तु सभी इसे नहीं सीखने लगते हैं। ईश्वर ही उन्हें भेजते हैं। उन लोगों के पास लिङ्क भी पहुँच जाती है किन्तु प्रेरणा तो वही निर्माण करेगा।

18.67

इदं(न्) ते नातपस्काय, नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं(न्), न च मां(म्) योऽभ्यसूयति॥18.67॥

यह सर्वगुह्यतम वचन तुझे अतपस्वी को नहीं कहना चाहिए; अभक्त को कभी नहीं कहना चाहिए तथा जो सुनना नहीं चाहता (उसको) नहीं कहना चाहिए और जो मुझमें दोषदृष्टि करता है, उसको भी नहीं कहना चाहिए।

विवेचन- श्रीभगवान् ने यह पहले बता दिया कि किसे नहीं सुनाना। जिसे कभी तप करने की इच्छा नहीं होती है, वह अपने कर्मों को टालता रहता है, ऐसे व्यक्ति को गीता जी नहीं सुनाना।

तप की इस प्रकार व्याख्या की गई है। यक्ष ने धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्न किया था कि तप क्या है?
यक्ष के प्रश्न का उत्तर - तपः स्वधर्मवर्तित्वं
नवम अध्याय का श्लोक -

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।

गुरुदेव ने इसका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वह कहते हैं कि जब यक्ष ने पूछा कि तप क्या है? तब युधिष्ठिर ने एक वाक्य में इसका उत्तर दिया, **"तपस्व धाम।**"
यह हमारे लिए इतनी महत्त्वपूर्ण बात है कि हमें लगता है कि हम कहाँ तक कर पाएँगे! हम तो पहली शर्त में ही असफल हो गए। हम कहाँ हिमालय की कन्दरा में जाकर बैठे हैं? हम कहाँ एक पग पर खड़े हैं? हम कहाँ इस प्रकार राम-राम जपते हुए ध्यान कर रहे हैं? हम तो सामान्य गृहस्थ आश्रम में रहने वाले मनुष्य हैं। उनके लिए ही कह दिया है कि "तपस्व धर्म" व्यक्ति स्वधर्म का, अपने कर्त्तव्यों का पालन, अपने दायित्वों का पालन करे, चाहे वह कार्यस्थल पर हो या अपने घर में हो या समाज के लिए या राष्ट्र के लिए कार्य करे। राष्ट्र के लिए भी हमारा कर्त्तव्य होता है। जिस प्रकार हम चुनाव के समय मतदान करते हैं या और अनेक कर्त्तव्य करते है तो अपने कर्त्तव्य करना, यही मनुष्य का तप है। यह तप इसलिए है क्योंकि इसमें कष्ट होते हैं।

हमारे घर में कोई रुग्ण हो जाता है, अस्वस्थ हो जाता है, कभी उसे चिकित्सालय में भर्ती करना पड़ता है, कभी उसकी शल्य-क्रिया होती है तो उसके लिए हमें जागना पड़ता है। एक माता को अपने पुत्र के लिए जागना पड़ता है। यदि कोई परिजन चिकित्सालय में भर्ती है तो हम स्वयं भोजन नहीं कर पाएँ फिर भी उनकी सेवा में लगे रहते हैं। घर के वृद्धजन की सेवा में लगे रहते हैं। यह समस्त सेवा इस तप में ढाल दी गयी है, लेकिन जो अपने जीवन में इस प्रकार से तप करने की इच्छा ही नहीं रखता और मनमौजी जीवन जीता है, केवल अपनी इन्द्रियों के सुख के लिए जीता है, उनमें ही रमा रहता है, अपने कर्त्तव्यों का त्याग करने वाला होता है, ऐसे व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं देना। उनकी समझ में आएगा ही नहीं क्योंकि उन्होंने जीवन में कोई तप नहीं किया है, कभी भी अपने जीवन को तपाया नहीं है। स्वर्ण भी बिना तपे कुन्दन नहीं बनता है। जब उसे तपाते हैं, उसकी अशुद्धियाँ गलती हैं। इस प्रकार हमारे जीवन के सारे तप हमारे जीवन की अशुद्धियों को दूर करते हैं, हमारा जीवन शुद्ध करते हैं और इससे मन तो शुद्ध होता ही है भले ही शरीर को कष्ट होता है लेकिन कर्त्तव्य कर्म करने से मन शुद्ध होता जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं, "ऐसे तप न करने वाले और जिनमें सृष्टिकर्ता के प्रति भक्ति नहीं है, जिनकी सुनने की इच्छा नहीं है, जो

सुनने की इच्छा ही नहीं रखते, उनको मत सुनाओ।

यहाँ एक अनुभव साझा किया।
एक बार उन्हें अपने पुत्र के पास सिंगापुर जाना था। वे बहुत मायूस हो गई थीं कि उन्हें लग रहा था कि वहाँ श्रीमद्भगवद्गीता कौन सुनेगा? गुरुदेव ने कहा कि "अरे! वहाँ के पेड़-पौधों को सुनाओ। वह नीचे जाकर एक बेंच पर बैठ गयीं और गीताजी पढ़ती थीं। वहाँ पर एक चीनी व्यक्ति आ गया और उसने पूछा कि आप यह क्या गा रही हैं? उन्होंने कहा कि मुझे यह सुनकर बहुत अच्छा महसूस हो रहा है। उनको अच्छा लगा। इसलिए श्रीभगवान् ने कहा, "उससे अच्छा है कि वातावरण को सुनाओ।" वातावरण में शब्द घूमते हैं और आकाश उसका विषय है। शब्द आकाश में रह जाता है। ध्वनि तरङ्गें जल्दी वाष्पित नहीं होती हैं। यहाँ श्रीभगवान् ने सूय का अर्थ बताया है जो दोष दृष्टि नहीं रखता है। दोष न होते हुए भी जब हम दोष दृष्टि से देखते हैं तो वह हमारे मन की असूय अवस्था होती है। हम किसी के घर गए और वहाँ की अच्छाइयों के बजाय वहाँ की कमियों को लेकर आए और अपने घर में उसी की चर्चा की तो हमें यह समझ लेना होगा कि हमारे मन में असूय का निर्माण हो गया।

नवम् अध्याय में भी श्रीभगवान् ने कहा है-

"अर्जुन! तुम अनसूय हो, इसलिए तुम्हें बता रहा हूँ। ज्ञानेश्वर महाराज भी कहते हैं और गुरुदेव का भी यहाँ प्रवचन का यही विषय चल रहा है। वह कहते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता की गहराई कब हमारे अन्दर आएगी या हम उनकी गहराई में जाएँगे? जब हम अर्जुन जैसा बनने का प्रयास करेंगे। ज्ञानेश्वर महाराज ने भी उसके लिए बहुत सुन्दर ओवी गायी है-

अहो अर्जुना चे पांती, जे परिसणया योग्य होती।
ती ही कृपा करुनी सन्तीं, अवधान द्यावें।।

"जो अर्जुन की पङ्क्ति में बैठना चाहते हैं ऐसे सन्त महात्माओं, मेरी ओर ध्यान दीजिए कि मैं क्या बताने वाला हूँ।"
जो गीता परिवार के माध्यम से आए हैं, विवेचन सुनने आए हैं, उनको बताओ क्योंकि वह मुझसे प्रेम करते हैं और मैंने ही तो उन्हें गीताजी सीखने की प्रेरणा दी है।

आगे श्रीभगवान् कहते हैं कि अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि किसे यह रहस्य बताना चाहिए।

18.68

य इमं(म्) परमं(ङ्) गुह्यं(म्), मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं(म्) मयि परां(ङ्) कृत्वा, मामेवैष्यत्यसंशयः॥18.68॥

मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रन्थ) को मेरे भक्तों में कहेगा, (वह) मुझे ही प्राप्त होगा - इसमें कोई सन्देह नहीं है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! जो व्यक्ति मुझसे परम प्रेम करते हुए, मेरे भक्त को अच्छी तरह प्रेम पूर्वक श्रीमद्भगवद्गीता के विषय में बताएगा, उनके मन में गीता जी के प्रति अखण्ड प्रेम-रस का निर्माण हो, इस प्रकार से बताएगा, वह मुझे ही प्राप्त कर लेगा, इसमें तुम कोई संशय मत रखो।" परमात्मा की प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण मार्ग है- "गीता पढ़ें, पढ़ाएं, जीवन में लाएं।"
यह मन्त्र पूज्य गुरुदेव ने दिया है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं, "गीताजी पढ़ना, पढ़ाना, जीवन में लाना, गीता जी की गहराई में उतरना, उसे हृदयस्थ करना तथा उसके बाद अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गीता जी झलकें ऐसा प्रयत्न करना। जो यहाँ तक की यात्रा करेगा, वह परमात्मा की प्राप्ति कर लेगा।"

18.69

न च तस्मान्मनुष्येषु, कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्माद्, अन्यः(फ्) प्रियतरो भुवि॥18.69॥

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डल पर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

विवेचन- हम सबने एक श्लोक सुना है जिसे गीता परिवार के प्रचार-प्रसार के लिए भी उपयोग में लाया जाता है, जिसका अर्थ है- जो मेरी श्रीमद्भगवद्गीता सिखाएगा, उसे मैं सर्वाधिक प्रेम करूँगा।

श्रीभगवान् कहते हैं, "जो मनुष्य मेरी श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ाएगा, समस्त मनुष्यों में मेरा प्रिय कार्य करने वाला उसके अतिरिक्त कोई भी अन्य नहीं होगा। समस्त पृथ्वी पर भविष्य में भी मुझे उससे अधिक प्रिय अन्य कोई भी नहीं होगा।" अर्थात् यदि हमें श्रीभगवान् के परम प्रिय होना है तो हमारे लिए श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ाना एक सरलतम मार्ग है क्योंकि यदि श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ाना हमारे जीवन का व्रत हो जाये तो श्रीभगवान् की परम प्रीति हमें प्राप्त होगी क्योंकि ये श्रीभगवान् के वचन हैं। इस सृष्टि में श्रीभगवान् के अनेक कार्य हैं किन्तु यह कार्य सर्वोपरि है और जो यह कार्य करेगा, वह श्रीभगवान् का परम प्रिय कार्य करेगा। एक प्रकार से श्रीभगवान् ने हमें यह शपथपत्र प्रदान कर दिया है।

आगे श्रीभगवान् और सरल मार्ग भी बताते हैं।

18.70

अध्येष्यते च य इमं (न्), धर्म्यं (म्) संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहम्, इष्टः (स्) स्यामिति मे मतिः॥18.70॥

जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "यह सही है कि कुछ व्यक्ति शुद्ध उच्चारण न होने के कारण गीता जी पढ़ा नहीं सकेंगे तो भी जो मनुष्य हम दोनों के इस संवाद का पठन या अध्ययन करेंगे, मेरा यह निश्चित मत है कि उन्होंने ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरा ही पूजन किया है।

यहाँ श्रीभगवान् ने संवाद शब्द का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि यह प्रवचन नहीं है।
अर्जुन ने बीच-बीच में अनेक प्रश्न पूछे हैं, इसलिए यह श्रीभगवान् तथा अर्जुन के मध्य का संवाद है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

गीता माते समान, मुमुक्ष बाळ हिंडते चुकुन,
माय लेकरा चे करणे मिलन, भाव असतो सन्तांचा।।

जो सन्त हैं, वे कहते हैं कि गीता जी सबको सुनाओ क्योंकि गीता जी माता के समान हैं और जो मनुष्य परमात्मा की भक्ति तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपने जीवन का उन्नयन करना चाहते हैं, उन दोनों का मिलन सन्त करवाते हैं। यह उनका स्वभाव होता है।

आगे चलकर श्रीभगवान् एक और स्तर नीचे आ जाते हैं तथा कहते हैं, "जो इतना भी किसी कारणवश नहीं कर पाते हैं वे केवल इस पावन ग्रन्थ को सुनें।

18.71

श्रद्धावाननसूयश्च, शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः(श्)शुभाँल्लोकान्, प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥18.71॥

श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस (गीता-ग्रन्थ) को सुन भी लेगा, वह भी शरीर छूटने पर पुण्यकारियों के शुभ लोकों को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "कोई बात नहीं! तुम उसका पठन नहीं कर सकते, तुम उसका उच्चारण नहीं कर सकते, तुम केवल श्रद्धा तथा दोष दृष्टि न रखते हुए इसे सुनो।" यहाँ श्रीभगवान् ने फिर से अनसूय शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है दोष दृष्टि न रखना। श्रीभगवान् कहते हैं, "केवल सुनने भर से ही वह मनुष्य भी पापों से मुक्त होगा, जीवन के अवरोधों से मुक्त होगा, दोषों से मुक्त होगा तथा अच्छा पुनर्जन्म प्राप्त करेगा, अच्छे माता-पिता प्राप्त करेगा तथा अत्यन्त उत्तम लोक की प्राप्ति करेगा तथा इसी प्रकार से उसकी यात्रा आगे बढ़ेगी।" इसलिए यहाँ पर श्रीभगवान् कहते हैं कि "केवल सुनो"। अब श्रीभगवान् अर्जुन से एक बहुत सुन्दर सा प्रश्न पूछते हैं। जिस प्रकार एक गुरु अपने शिष्य से प्रश्न पूछते हैं, जिस प्रकार से एक माता अपने बालक से प्रश्न पूछती है, उसी प्रकार से अत्यन्त मधुर भाव से श्रीभगवान् अर्जुन से प्रश्न पूछते हैं।

18.72

कच्चिदेतच्छ्रुतं(म्) पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः(फ्), प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥18.72॥

हे पृथानन्दन ! क्या तुमने एकाग्र-चित्त से इसको सुना? (और) हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हुआ ?

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से अत्यधिक प्रेम करते हैं, इसलिए अर्जुन से पूछते हैं, "अर्जुन! तुम सुन रहे हो?" युद्ध-भूमि में ढोल, युद्ध-वाद्य मृदङ्ग तथा नगाड़े आदि बज रहे हैं और कोलाहल तथा अनिश्चितता का वातावरण है। हमारे जीवन के कोलाहल में भी हमारे आस-पास किसी भी प्रकार का कोलाहल होता रहे, फिर भी हम कोई महत्त्वपूर्ण वचन सुन पाते हैं। इसी प्रकार श्रीभगवान् कहते हैं, "हे पार्थ! क्या तुमने एकाग्रचित होकर इस सङ्घर्षपूर्ण परिस्थिति में मेरे वचन सुने हैं?" हमारा जीवन भी अनेक सङ्घर्षों से भरा होता है। केवल युद्ध-भूमि में जाना ही सङ्घर्षपूर्ण नहीं है, हमारे जीवन में भी रात-दिन सङ्घर्ष रहते हैं।

तुकाराम महाराज तो कहते हैं -

रात्री दिवस आम्हां युद्धाचा प्रसंग|
अंतर्बाह्य जन आणि मन ||१||
जीवाही आगोज पडती आघात|
येउनिया नित्य नित्य करी ||२||

रात-दिन सङ्घर्षपूर्ण परिस्थितियों में हमारे अन्दर भी विकारों के कारण बहिरङ्ग में लोगों के साथ व्यवहार दिखाई देते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि हमें भी अर्जुन के समान अपने जीवन के कोलाहल में, अपने जीवन के सङ्घर्षपूर्ण प्रसङ्ग में भी श्रीभगवान् के वचन सुनना है, याद रखना है।

श्रीभगवान् कहते हैं, "हे धनञ्जय! अज्ञान और मोह के कारण जो तुम्हारे मन में सम्मोह का निर्माण हुआ है, वह क्या प्रनष्ट हुआ?" श्रीभगवान् ने केवल नष्ट नहीं कहा बल्कि प्रनष्ट कहा, जिसका अर्थ है पूरी तरह से नष्ट हुआ कि नहीं? सम्पूर्णतः गया कि नहीं? श्री वेदव्यास जी ने भी बहुत सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है, इसलिए अर्जुन का भी उतना ही सुन्दर उत्तर है।

18.73

अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः(स्) स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः(ख्), करिष्ये वचनं(न्) तव॥18.73॥

अर्जुन बोले - हे अच्युत ! आपकी कृपा से (मेरा) मोह नष्ट हो गया है (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। (मैं) सन्देह रहित होकर स्थित हूँ। (अब मैं) आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

विवेचन- यहाँ अर्जुन ने भी श्रीभगवान् के लिए अनेक सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है। श्रीभगवान् वेदव्यास जी द्वारा जिस प्रकार अर्जुन के लिए अनेक विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार श्रीभगवान् के लिए भी अनेक सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है।
अच्युत का अर्थ है जो कभी दिखता नहीं, च्युत नहीं होता, अपना स्थान कभी नहीं छोड़ता। अर्जुन कहते हैं, "हे अच्युत! आपका प्रसाद ऐसा है कि मैं भी अच्युत बन गया, मैं भी अडिग बन गया, मेरा मोह नष्ट हो गया और केवल मोह नष्ट नहीं हुआ, अपितु क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए, यह बात मेरी समझ में आ गयी है और सारे सन्देह, सारे द्वन्द्व समाप्त हो गए हैं। अब मैं सन्देह-रहित होकर खड़ा हूँ, अडिग होकर खड़ा हूँ।

पहले अध्याय में अर्जुन कह रहे थे कि मेरे हाथ से गाण्डीव छूट रहा है-

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।

अर्थात् मेरा मन भटक रहा है और मैं खड़ा रहने के योग्य भी नहीं रहा हूँ। यह कह कर अर्जुन बैठ जाते हैं। ऐसी जिसकी अवस्था थी, वह अभी कह रहे हैं कि "मैं अब सन्देह रहित होकर खड़ा हो गया हूँ। अब आपके वचनों के अनुसार ही वर्तन करूँगा।" अर्जुन ने यह भी कह दिया कि "मैं आपका शिष्य हूँ और आपने जो उपदेश दिया है, अब उसके अनुसार ही वर्तन करूँगा और मेरा सारा सन्देह चला गया है। मुझे अब शक्ति प्राप्त हो गई है।

इस ग्रन्थ का आरम्भ धृतराष्ट्र के वचन से हुआ है और समापन सञ्जय के वचनों से हुआ है।

18.74

सञ्जय उवाच
इत्यहं(म्) वासुदेवस्य, पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषम्, अद्भुतं(म्) रोमहर्षणम्॥18.74॥

सञ्जय बोले - इस प्रकार मैंने भगवान् वासुदेव और महात्मा पृथानन्दन अर्जुन का यह रोमाञ्चित करने वाला अद्भुत संवाद सुना।

विवेचन- सञ्जय कहते हैं वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान् का और महात्मा अर्जुन का संवाद ऐसा अद्भुत पुलकित करने वाला संवाद जो पहले कभी नहीं सुना। वैसा संवाद मैंने सुना ।

18.75

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान्, एतद् गुह्यमहं(म्) परम्।
योगं(म्) योगेश्वरात्कृष्णात्, साक्षात्कथयतः(स्) स्वयम्॥75॥

व्यासजी की कृपा से मैंने स्वयं इस परम गोपनीय योग (गीता-ग्रन्थ) को कहते हुए साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से सुना है।

विवेचन- सञ्जय कहते हैं कि ऐसा संवाद मैंने गुरु कृपा से व्यास जी की कृपा से सुना। गुरु ही किसी भी प्रसङ्ग को देखने का एक अलग ही दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। व्यापक दृष्टिकोण देते हैं।

जिस प्रकार श्रीभगवान् ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि विश्व रूप दर्शन करने के लिए प्रदान की थी उसी प्रकार व्यास जी ने दिव्य दृष्टि सञ्जय को प्रदान की। जो अति गोपनीय रहस्य श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा वह बंसी बजाने वाले या गोवर्धन गिरधारी ने नहीं कहा, न ही वन में गौ चराने वाले गोपाल कृष्ण ने कहा, न ही अश्वमेध यज्ञ में झूठी पत्तल उठाने वाले कृष्ण ने कहा और न ही गोपियों के साथ रास करने वाले कृष्ण ने कहा। यह बात स्वयं श्री योगेश्वर भगवान् ने कही। अर्थात् श्रीकृष्ण ने परमात्मा के साथ योग करके यह बात कही जो मैंने साक्षात सुनी क्योंकि मुझे मेरे गुरु ने यह सब सुनने की दिव्य शक्ति प्रदान की मुझे सामर्थ्य प्रदान किया और गुरु कृपा से मुझे श्रीभगवान् के विश्वरूप के दर्शन भी हुए। तीन लोगों को विश्वरूप दर्शन प्राप्त हुए सञ्जय, अर्जुन और हनुमान जी महाराज जो अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजे थे। वहाँ पर हरि, हर दोनों ही थे। हरि जो स्वयं अर्जुन के सारथी बन घोड़े की लगाम पकड़े हुए थे और हर अर्थात् हनुमान जी महाराज जो स्वयं भगवान् शङ्कर के अवतार हैं।

18.76

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य, संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः(फ्) पुण्यं(म्), हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥18.76॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र और अद्भुत संवाद को याद कर-करके (मैं) बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

विवेचन- यहाँ सञ्जय कहते हैं कि हे! राजन ये केशव और अर्जुन का संवाद मुझे पुनः-पुनः स्मरण हो रहा है। इसके कारण मैं आनन्दित और रोमाञ्चित हो रहा हूँ।

इसका बहुत सुन्दर वर्णन करते हुए सन्त ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं कि सञ्जय के अष्टसात्विक भाव प्रकट हो गए और नेत्रों से झरझर आँसू बहने लगे। रोमाञ्च के कारण शरीर पर रोंगटे खड़े होने लगे।

18.77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूपमत्यद्भुतं(म्) हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्, हृष्यामि च पुनः(फ्) पुनः॥18.77॥

जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं (और) जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति (और) अचल नीति है - (ऐसा) मेरा मत है।

विवेचन- सञ्जय ने न केवल संवाद सुना अपितु विश्वरूप दर्शन भी प्राप्त किये। सञ्जय कहते हैं श्रीहरि का विश्वरूप दर्शन जो मुझे अपने गुरुदेव की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त होने के कारण हुआ वह मुझे पुनः-पुनः स्मरण हो रहा है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, कैसे होता है यह ज्ञान अवतरित।

ऐसे ज्ञानप्रकाशे पाहिल, तैं मोहन्धकारू जाइल।
जैन गुरुकृपा होईल, पार्थ गा।।

हे पार्थ कब ज्ञान का प्रकाश आलोकित होगा, कब यह मोह का अन्धकार जाएगा जब गुरु कृपा होगी। तभी वह सर्वोपरि ज्ञान प्राप्त होगा जो सञ्जय को प्राप्त हुआ है। इसीलिए जब धृतराष्ट्र ने पहला प्रश्न सञ्जय से किया।

धृतराष्ट्र उवाच
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।1.1।।

पुत्र मोह के कारण धृतराष्ट्र सञ्जय से पूछते हैं कि मेरे और पाण्डु के पुत्र क्या कर रहे हैं?

धृतराष्ट्र में अपना और पराया का जो भेद है वह दिखाई पड़ता है तो वे सञ्जय से पूछते हैं कि तुम्हारा क्या मत है कौन युद्ध में जीतेगा? मेरा दुर्योधन ही जीतेगा न क्योंकि उसके पास तो ग्यारह अक्षौहिणी सेना है और पाण्डवों के पास तो केवल सात अक्षौहिणी सेना है। दुर्योधन के साथ तो भीष्म पितामह हैं, द्रोणाचार्य हैं, कृपाचार्य हैं। भीष्म पितामह को तो कोई नहीं हरा सकता। हमारे पास तो कर्ण भी है। तो तुम बताओ मेरे दुर्योधन की जीत तो निश्चित है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि

ऐसे ज्ञानप्रकाशे पाहिल, तैं मोहन्धकारू जाइल।
जैन गुरुकृपा होईल, पार्थ गा।।

अठारह अध्याय एक अध्याय गीता है। यह सम्पूर्ण गीता का सार है, कलश है। कलश के ऊपर क्या होता है ध्वज। कलश के ऊपर का ध्वज या श्रीमद्भागवद्गीता का अन्तिम श्लोक है जो लहरा कर बतायेगा कि किसकी विजय होगी।

18.78

यत्र योगेश्वरः(ख्) कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः(र्), ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥18.78॥

विवेचन- सञ्जय कहते हैं कि हे राजन! मुझसे क्या पूछते हो यह तो स्पष्ट दिखाई दे रहा है। जहाँ पर स्वयं योगेश्वर कृष्ण हैं जिन्होंने साक्षात परमात्मा से योग किया है और जहाँ धनुर्धारी पार्थ है जो अपना कार्य स्वयं कर सकता है। वहाँ धन, लक्ष्मी अर्थात् श्री, समृद्धि, विजय, और यश, विभूति और सौन्दर्य सारा सदाचार, नैतिकता वहाँ विजय निश्चित है, यही मेरा मत है।

औरङ्गजेब ने इतनी धन, सम्पत्ति, समृद्धि इकट्ठी की, अनैतिकता से अपने भाई का सिर कटवा कर अपने ही पिता को उपहार के रूप में भेजा। साम्भाजी पर इतनी अत्याचार किया और जब उसका पतन हुआ व मृत्यु हुई, औरङ्गाबाद में उसकी डायरी मिली जिसमें लिखा था कि मुझे बहुत पश्चाताप हो रहा है। मैं नर्क में जाऊँगा, मैंने बहुत अत्याचार किए हैं। अन्तिम क्षण में क्या होगा?

यहाँ पर योगेश्वर कृष्ण मस्तिष्क व बुद्धि का प्रतीक हैं और पार्थ धनुर्धारी अर्जुन शारीरिक शक्ति का प्रतीक हैं।

जहाँ पर यह दोनों होंगे mind fitness and body fitness, वहाँ लक्ष्य की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहेगी। कर्म अर्थात् अर्जुन और ज्ञान अर्थात् योगेश्वर कृष्ण हैं। हमारे यहाँ राजाओं के भी गुरु होते थे। श्री राम के गुरु वशिष्ठ जी, कृष्ण जी के गुरु सान्दिपनि जी, चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु चाणक्य। जहाँ गुरु, ज्ञान, विवेक होगा वहाँ विजय निश्चित है।

इसलिए इस श्लोक का पठन तीन बार किया जाता है।
इसी के साथ सत्र का समापन हुआ।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप

श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'मोक्षसन्यासयोग' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||